यह मोक्ष के कारण का कारण है। समझ में आया? श्वेताम्बरों ने जो शास्त्र रचे हैं, वह वीतराग की वाणी नहीं है, वह तो सब अपनी कल्पना से रचे हुए हैं। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। वह तो निर्वाण के कारण का कारण है। अपना शुद्धस्वरूप, आनन्द की प्राप्ति होना वह, मुक्ति और उसका कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसका कारण द्रव्यस्वभाव। अपना चिदानन्दस्वरूप, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र; उसका कारण द्रव्यस्वभाव। और उस कारण से उत्पन्न हुआ मोक्षमार्ग, वह मोक्ष का कारण; और मोक्षमार्ग का कारण / निमित्तकारण वीतराग की वाणी। स्पष्ट है, बिल्कुल स्पष्ट हो गया। आता है न? भाई! समझ में आया? बात तो ऐसी है।

यह नियमसार है। नियम अर्थात् मोक्ष के मार्ग का सार। सार का अर्थ ? व्यवहाररत्नत्रय जो विकल्प है, उससे रहित आत्मा का मोक्षमार्ग है। व्यवहार है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं है – ऐसा बताते हैं। समझ में आया ? बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प आता है परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्ष का मार्ग तो भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, कहा, वैसा आत्मा का अन्तर अनुभव करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करना, वह मोक्ष का मार्ग एक ही है। और उस मोक्षमार्ग में निमित्तकारणरूप से वीतराग की वाणी है; अज्ञानी की वाणी या अल्पज्ञानी की वाणी निमित्त नहीं होती। सम्यग्दृष्टि कहता है, वह तो सम्यग्दर्शन वीतराग की वाणी कहता है। समझ में आया ? अपने घर की बात नहीं है।

श्लोक-१५

और (आठवीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा जिनवाणी को-जिनागम को वन्दन करते हैं) —

(हरिणी)

ललितललितं शुद्धं निर्वाणकारणकारणं,
निखिलभविनामेतत्कर्णामृतं जिनसद्वचः।
भवपरिभवारण्यज्वालित्विषां प्रशमे जलं,
प्रतिदिनमहं वन्दे वन्द्यं सदा जिनयोगिभिः ।।१५।।

(वीरछन्द)

जो अत्यंत मनोहर शुद्ध तथा शिवपथ के कारण हैं।
भव्यों के कणों को अमृत दावानल को जल सम हैं॥
जैन योगियों द्वारा वन्द्य सदा ऐसे जिनराज वचन।
मन-वच-तन से नित प्रति करता मैं उन वचनों को वन्दन ॥१५॥

श्लोकार्थ :- जो (जिनवचन), ललित में ललित[१] हैं; जो शुद्ध हैं; जो निर्वाण के कारण का कारण है; जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है; जो भवभवरूपी अरण्य

१. ललित में ललित=अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करें, ऐसे अतिशय मनोहर।

के उग्र दावानल को शान्त करने में जल है और जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं — ऐसे इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक् जिनागम को) मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ॥१५॥

श्लोक-१५ पर प्रवचन

जो सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;... वहाँ सुधारा नहीं। वहाँ सुधारना चाहिए। **सर्व जीवों के कर्णों को अमृत है;...** कल बताया था न? भवि... भवि। **सर्व भव्यों के कर्णों को अमृत है;...** ऐसा लेना। वीतराग की वाणी वीतरागता उत्पन्न करानेवाली है। और वह वीतराग की वाणी **सर्व जीवों के कर्णों को अमृत है;...** कान का अमृत। वह वीतराग की वाणी है। सर्व भव्यों की जगह यहाँ सर्व जीव लेना। कल बताया था।

जो भवभवरूपी अरण्य के उग्र दावानल को शान्त करने में जल है... वीतराग वाणी, पूर्णानन्द और वीतराग की शान्ति उत्पन्न करने में निमित्त, ऐसी वाणी **भवभवरूपी अरण्य...** जंगल, चौरासी के अवतार के जंगल, उनमें उग्र दावानल, मिथ्यात्व और राग-द्वेष से सुलग रहा है। पूरा संसार सुलग रहा है। उसे शान्त करने में वीतराग की वाणी-जल निमित्त है। समझ में आया? वह वीतराग की वाणी जो कि दिगम्बर सन्तों ने कही वह। पण्डितजी! समझ में आया? उस वाणी पर यहाँ जोर देते हैं। सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरों ने अपनी कल्पना से शास्त्र बनाये हैं, वे शास्त्र मोक्ष का निमित्त भी नहीं है। मोक्ष के कारण में वे निमित्त भी नहीं हैं। समझ में आया?

जो जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं... देखो! सन्त, वीतरागी मुनि, कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि। ऐसे जैन योगियों को वह वाणी वन्द्य है। समझ में आया? क्यों (वन्द्य) कहा? कि जिसने राग से भिन्न अपने आत्मा का भान किया है, ऐसे योगी, ऐसी वह वीतराग की वाणी, वीतराग को बतानेवाली है तो उन्हें वन्द्य है। राग को अपना माननेवाले, राग से धर्म मनवानेवाले शास्त्र, वे शास्त्र ही नहीं हैं, तो वे वीतरागी मुनियों को वन्द्य नहीं हैं। वन्द्य तो वीतराग की वाणी है, वह वन्द्य है। जैसे भगवान की प्रतिमा व्यवहार से वन्द्य है। शुभभाव है न? इसी प्रकार भगवान की वाणी भी व्यवहार से वन्द्य है। समझ

में आया ? **जैन योगियों द्वारा...** ऐसी भाषा ली है। क्यों ? जिन्हें वीतरागभाव में, वीतराग वाणी में तो वीतरागता बतानी है; अत: जिन्हें अपने स्वभाव की वीतरागता की रुचि, दृष्टि हुई—ऐसे जैन योगियों को वीतराग वाणी वन्द्य है। समझ में आया ? राग और विकल्प से धर्म माननेवाले, वे जैन नहीं, वे जैन योगी नहीं, इसलिए जिनवाणी उन्हें वन्द्य नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ३२ शास्त्र कहे वे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ३२ शास्त्र भगवान की वाणी नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है। यह वाणी सन्त—अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य से चली आयी है, वह जिनवाणी है। ३२-४५ तो नये कल्पित बनाये हैं, वह भगवान की वाणी नहीं है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर। यह वहाँ पालीताणा है न ? नीचे आगम मन्दिर है न ? शास्त्र की रचना की है। वह नहीं।

यह वीतराग वाणी **जैन योगियों द्वारा सदा वंद्य हैं...** इसका अर्थ क्या ? कि वीतराग की वाणी में वीतरागता बतलानी है। पंचास्तिकाय में कहा न ? चार अनुयोग का सार वीतरागता है। इसका अर्थ क्या ? (यही) कि निमित्त, राग और अल्पज्ञता की उपेक्षा कराकर, त्रिकाली ज्ञायकभाव में अपेक्षा करावे, वह जिनवाणी है। समझ में आया ? जिनवाणी, वीतराग देव परमात्मा और उनकी वाणी और दिगम्बर सन्तों ने कही हुई वाणी, वह सर्व वीतराग की वाणी है। समझ में आया ? वह वाणी वीतरागता को बतलानेवाली है, अत: जिन्हें वीतरागता की रुचि है, अपना आत्मा राग से भिन्न, पुण्य से भिन्न है, ऐसे आत्मा की रुचि—दृष्टि हुई है, ऐसा धर्मात्मा जिन योगियों की यह वाणी वीतरागता बतलानेवाली (होने से) उन्हें वन्द्य है। समझ में आया ?

इन जिनभगवान के सद्वचनों को... देखो, भाषा। **इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक्...)** वचन हैं। जिनागम वीतराग की वाणी। यह समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, सर्व वीतराग की वाणी है। अनादि सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही, वह वाणी है। इतना सूक्ष्म है। अभी झगड़े उठे। आहा..हा..! **इन जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक्)....**

मुमुक्षु : नाम बड़े-बड़े भगवती और.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भगवती और दशवैकालिक (शास्त्र) सब कल्पित हैं। वीतराग की वाणी नहीं हैं। उनमें पूर्वापर विरोध बहुत है। यह तो उसमें भी बहुत विचारे तो उसमें भी शंका पड़ती है, परन्तु निकलना कैसे? जाना कहाँ?

मुमुक्षु : सम्प्रदाय का व्यामोह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यामोह बहुत है। सम्प्रदाय में पड़े हों तो निकल नहीं सकते।

भगवान की वाणी किसे कहते हैं? ओहो..हो...! देखो! **जिनभगवान के सद्वचनों...** पाठ है न? **जिनसद्वचः जिनसद्वचः** वीतराग की सत्य वाणी है। जिसमें आत्मा का सत्स्वभाव उत्पन्न हो, वीतरागस्वभाव उत्पन्न हो, रागभाव का नाश हो, उस वाणी को सद्वचन जिनागम कहते हैं। जो वाणी राग की पोषक है, वह जिनवाणी नहीं है। वीतरागभाव की पोषक हो, उसे जिनवाणी कहा जाता है। समझ में आया?

जिनभगवान के सद्वचनों को (सम्यक् जिनागम को) मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूँ। आचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं। दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले हुए, उन्होंने यह टीका बनायी। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य के हैं। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में हुए। उनके मूल शब्द हैं और उनकी टीका पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। वे कहते हैं कि मैं तो ऐसी जिनवाणी को वन्दन-नमस्कार करता हूँ। दूसरों को मैं वन्दन-नमस्कार नहीं करता। ऐसा कहते हैं, लो! यह ९ वाँ श्लोक, मूल श्लोक, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (का श्लोक / गाथा) है।

गाथा-९

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ च काल आकाशम्।
तत्त्वार्था इति भणिताः नानागुणपर्यायैः संयुक्ताः।।९।।

अत्र षण्णां द्रव्याणां पृथक्पृथक् नामधेयमुक्तम्। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनो-वाक्कायायुरुच्छ्वासनिःश्वासाभिधानैर्दशभिः प्राणैः जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः। सङ्ग्रहनयोऽयमुक्तः। निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः। व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः। शुद्धसद्भूतव्यवहारेण केवलज्ञानादिशुद्धगुणानामाधारभूतत्वात्कार्यशुद्धजीवः। अशुद्धसद्भूत-व्यवहारेण मतिज्ञानादिविभावगुणानामाधारभूतत्वादशुद्धजीवः। शुद्धनिश्चयेन सहजज्ञानादिपरम-स्वभावगुणानामाधारभूतत्वात्कारणशुद्धजीवः। अयं चेतनः। अस्य चेतनगुणाः। अयममूर्तः। अस्यामूर्तगुणाः। अयं शुद्धः। अस्य शुद्धगुणाः। अयमशुद्धः। अस्याशुद्धगुणाः। पर्यायश्च। तथा गलनपूरणस्वभावसनाथः पुद्गलः। श्वेतादिवर्णाधारो मूर्तः। अस्य हि मूर्तगुणाः। अयमचेतनः। अस्याचेतनगुणाः। स्वभावविभावगतिक्रिया-परिणतानां जीवपुद्गलानां स्वभावविभावगतिहेतुः धर्मः। स्वभावविभावस्थितिक्रिया-परिणतानां तेषां स्थितिहेतुरधर्मः। पञ्चानामवकाशदान-लक्षणमाकाशम्। पञ्चानां वर्तनाहेतुः कालः। चतुर्णाममूर्तानां शुद्धगुणाः, पर्यायाश्चैतेषां तथाविधाश्च।

षट्द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

अन्वयार्थ :—[जीवाः] जीव, [पुद्गलकायाः] पुद्गलकाय, [धर्माधर्मौ] धर्म, अधर्म, [कालः] काल [च] और [आकाशम्] आकाश—[तत्त्वार्थाः इति भणिताः] ये तत्त्वार्थ कहे हैं, जो कि [नानागुणपर्यायैः संयुक्ताः] विविध गुण-पर्यायों से संयुक्त हैं।

टीका :—यहाँ (इस गाथा में) छह द्रव्यों के पृथक्-पृथक् नाम कहे गये हैं।

स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वचन, काय, आयु, और श्वासोच्छ्वास नामक दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है — यह संग्रहनय कहा। निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध* जीव' है। अशुद्ध-सद्भूत -व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है। यह (जीव) चेतन है; इसके चेतन गुण हैं। यह अमूर्त है; इसके अमूर्त गुण हैं। यह शुद्ध है; इसके शुद्ध गुण हैं। यह अशुद्ध है; इसके अशुद्ध गुण हैं। पर्याय भी इसी प्रकार हैं।

और जो गलन-पूरण स्वभावसहित है (अर्थात्, पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है), वह पुद्गल है। यह (पुद्गल) श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है; इसके मूर्त गुण हैं। यह अचेतन है; इसके अचेतन गुण हैं।

स्वभावगतिक्रियारूप[१] और विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।

---

* प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है, अर्थात् सहजज्ञानादिकसहित है; इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है। जो कारणशुद्ध जीव को भाता है-उसी का आश्रय करता है, वह व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध (केवलज्ञानादि सहित) होता है, अर्थात् 'कार्यशुद्ध जीव' होता है। शक्ति में से व्यक्ति होती है; इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है। ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है। (कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।)

१. चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जीव, ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगतिक्रिया है और संसारावस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है, वह जीव की विभावगतिक्रिया है। एक पृथक् परमाणु, गति करता है, वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) विभागतिक्रिया है। इस स्वाभाविक तथा वैभाविकगतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

स्वभावस्थितिक्रियारूप[१] और विभावस्थितिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को स्थिति का (स्वभावस्थिति का तथा विभावस्थिति का) निमित्त, सो अधर्म है।

(शेष) पाँच द्रव्यों को अवकाशदान (अवकाश देना) जिसका लक्षण है, वह आकाश है।

(शेष) पाँच द्रव्यों को वर्तना का निमित्त, वह काल है।

(जीव के अतिरिक्त) चार अमूर्तद्रव्यों के शुद्ध गुण हैं; उनकी पर्यायें भी वैसी (शुद्ध ही) हैं।

गाथा-९ पर प्रवचन

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

नीचे इसका हरिगीत है।

षट्द्रव्य पुद्गल, जीव, धर्म, अधर्म, कालाकाश हैं।
ये विविध गुण-पर्याय से संयुक्त षट् तत्त्वार्थ हैं॥९॥

यहाँ द्रव्य को भी तत्त्वार्थ कहा गया है। षट्द्रव्य कहो या षट् तत्त्वार्थ कहो, दोनों नाम भेद है वह, परन्तु वस्तुभेद नहीं है।

***अन्वयार्थ :*—जीव,...** भगवान की वाणी में जीव आये, जीव। अनन्त जीव। **पुद्गलकाय,...** पुद्गलास्ति। यह परमाणु, यह जड़, मिट्टी अनन्त पुद्गल। **धर्म, अधर्म,...** ये दो पदार्थ हैं। **काल...** भगवान की वाणी में आया। देखो! कालद्रव्य आया है, काल, पदार्थ / तत्त्वार्थ आया है। समझ में आया? श्वेताम्बर में काल को नहीं मानते। काल को औपचारिक मानते हैं। वास्तविक तत्त्व नहीं मानते। इसलिए कहा कि कालद्रव्य भगवान

१. सिद्धदशा में जीव स्थिर रहता है, वह जीव की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और संसारदशा में स्थिर रहता है, वह जीव की वैभाविकस्थितिक्रिया है। अकेला परमाणु, स्थिर रहता है, वह पुद्गल की स्वाभाविकस्थितिक्रिया है और स्कन्ध स्थिर रहता है, वह पुद्गल की (स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) वैभाविकस्थितिक्रिया है। इस जीव-पुद्गल की स्वाभाविक तथा वैभाविक स्थितिक्रिया में अधर्मद्रव्य निमित्तमात्र है।

ने कहा हुआ है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्यों में, असंख्य (काल) द्रव्य है, उनमें काल को भी पदार्थ कहा गया है। **और आकाश—ये तत्त्वार्थ कहे हैं,...** ये तत्त्वार्थ अर्थात् छह द्रव्य कहे हैं।

छह द्रव्य कैसे हैं ? **विविध गुण-पर्यायों से संयुक्त हैं।** प्रत्येक आत्मा और परमाणु अपने-अपने अनेक प्रकार के गुण और अपनी पर्याय से सहित हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों ले लिये। प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु द्रव्य जो है, वह अपने गुण-शक्ति और पर्याय से सहित है। अपने गुण और पर्याय सहित है। पर के गुण और पर्याय से रहित है। समझ में आया ?

यहाँ (इस गाथा में) छह द्रव्यों के पृथक्-पृथक् नाम कहे गये हैं। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वचन, काय, आयु, और श्वासोच्छ्वास... ये दस प्राण हैं न ? दस प्राण। इन **नामक दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है,....** संसारदशा में दस प्राण से जीता है। **जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है...** सूक्ष्मता से बात बाद में लेंगे, पहले स्थूल लेते हैं। **यह संग्रहनय कहा।** संग्रहनय अर्थात् सभी जीव एक साथ में रहे।

जो जीव **दस प्राणों से (संसारदशा में) जो जीता है, जियेगा और पूर्व काल में जीता था, वह 'जीव' है—यह संग्रहनय कहा। निश्चय से भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** देखो ! अब आया। वास्तव में तो यह आत्मा उसे कहते हैं कि अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द के प्राण को धारण करे, उसका नाम जीव है। सूक्ष्म बात है। शरीर आदि नहीं, इन्द्रिय आदि दस प्राण से जीवे वह जीव नहीं। भगवान ने अपना आत्मा जीवद्रव्य में ऐसा कहा कि **भावप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है।** भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जीव क्यों कहा ? अपने ज्ञान-दर्शन, आनन्द, सत्ता से जीता है, इसलिए जीव है। कहो, पोपटभाई ! ऐसे जीव को इसे मानना चाहिए। अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द से आत्मा टिकता है / जीता है। राग से, पुण्य से नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

व्यवहार से द्रव्यप्राण धारण करने के कारण 'जीव' है। ये दस प्राण जड़ हैं, वह व्यवहार है। **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से...** अब देखो ! **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** यह बात सूक्ष्म

की है। भगवान कार्यशुद्ध उसे कहते हैं, कि जो आत्मा में अपनी पर्याय में अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य जो प्रगट हुआ, ऐसी पर्याय शुद्ध है परन्तु सद्भूत अपने में है, परन्तु व्यवहार, एक समय की पर्याय है, इसलिए व्यवहार है। सूक्ष्म है। **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों...** गुण शब्द से यहाँ पर्याय है। **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** भारी सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा अन्तर में जो शुद्ध आनन्दघन है, ज्ञायकभाव है, वह तो कारण जीव है और उसमें से केवलज्ञान और केवलदर्शन आदि परमात्म पद प्रगट हो, उसे कार्य जीव कहा जाता है। (श्वेताम्बर के) ३२-४५ (सूत्र में) कारण जीव-कार्य जीव की ऐसी बात नहीं है। कभी सुना है? पण्डितजी!

मुमुक्षु : ऐसा सुनानेवाला ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान परमेश्वर जिनवाणी में जो छह द्रव्य कहे, उनमें यह जीवद्रव्य उसे कहा, जीव... जीव... उस जीव के दो प्रकार कहे। एक तो भावप्राण से जीवे, वह जीव और व्यवहार से द्रव्यप्राण से जीवे, वह व्यवहार, यह पहले निकाल दिया। अब दूसरी चीज़। यह आत्मा अपना शुद्ध ध्रुवस्वरूप जो ज्ञायकभाव है, त्रिकाल ज्ञायकभाव है, उसे भगवान, कारणजीव कहते हैं। कि जिस कारणजीव में से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द ऐसी कार्यदशा, कारण में से प्रगट होती है। आहा..हा..! समझ में आया? भारी-सूक्ष्म, भाई! वीतराग का तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। साधारण प्राणी के साथ, साधारण के साथ इसका मिलान नहीं हो सकता। जीव के दो प्रकार—एक भावप्राण, द्रव्यप्राण लिये। एक अब कारणजीव और कार्यजीव ऐसा लिया। कहो, समझ में आया? क्या कहते हैं? यह शान्ति से समझने की चीज़ है। जन्म-मरण मिटाने की बात है।

कहते हैं कि परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा कि जिस आत्मा में से केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य प्रगट होता है, उस जीव को यहाँ कार्यजीव कहा जाता है। जिसने कार्य किया। पोपटभाई! लो, यह कार्य किया। आहा..हा..! कोई हिन्दी लोग आये हैं तो स्वाध्याय में... तुम्हारा आधा घण्टा चला गया। कहो, समझ में आया?

कहते हैं **शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार...** क्या कहते हैं? आत्मा अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वरूप

जो त्रिकाल है, उसे यहाँ कारणजीव कहा है। क्योंकि कारणजीव में से कार्य-आत्मा उत्पन्न होता है। आहा..हा..! यह वाणी यहाँ दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिगम्बर सन्त.... आप सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी महासन्त, धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ जंगल में रहनेवाले नग्न मुनि थे और अपने आनन्दस्वरूप में झूलनेवाले थे। मात्र नग्न नहीं। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार ले लिया है।

अपनी चीज़ अन्तर आनन्द और अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, जो कारण चतुष्टय जो कारणजीव में पड़े हैं। कारणजीव अर्थात् ध्रुव जीव। जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, वीर्य पड़े हैं, उन अनन्त चतुष्टयात्मक आदि अनन्त गुणों का पिण्ड आत्मा है। उस आत्मा को परमेश्वर कारणजीव कहते हैं और उस कारणजीव में से अन्तर्मुख होकर जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द परमात्मदशा प्रगट होती है, उस परमात्मदशा को कार्यजीव कहते हैं। यह वाणी अन्यत्र कहीं है ही नहीं। समझ में आया? अपने दोपहर में वह चलता है। यह तो नियमसार है। कारणपरमात्मा का चलता है न? इसमें ही कारणपरमात्मा और यह कार्यजीव और कारणजीव, उसमें कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा, इस प्रकार बात की है। आहा..हा..! यहाँ जीव लेना है न? जीव है न? इसलिए व्याख्या ली है। आहा..हा..!

यह आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में वर्तमान में ध्रुव, ध्रुव जो वस्तु, एक समय की पर्याय से भिन्न है। राग से तो भिन्न, संयोग से तो भिन्न, एक समय की पर्याय / अवस्था से भी भिन्न, जो रसकन्द-ज्ञायक रसकन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप सचेतस्वभाव, ज्ञायकभाव, ऐसा त्रिकाल ज्ञायकभाव, उसे यहाँ भगवान कारणजीव कहते हैं कि जिसके आश्रय से अपना कार्यपरमात्मा प्रगट होता है, उसे कारणजीव कहते हैं। भारी सूक्ष्म! कहो, समझ में आया?

शुद्ध सद्भूत... क्योंकि केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनन्त आनन्द जो अरिहन्त भगवान

को प्रगट हुए, तो वह पर्याय शुद्ध है और अपनी है, इसलिए सद्भूत है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से एक अंश है, इसलिए व्यवहार है। आहा..हा..! समझ में आया? भगवान आत्मा, देह मन्दिर में विराजमान चैतन्य प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा नित्यानन्द प्रभु आत्मा है। जिसमें नित्य अतीन्द्रिय आनन्द भरा हुआ है। आहा..हा..! ऐसा नित्यानन्द प्रभु यह आत्मा, उसे यहाँ कारणजीव कहा गया है। उस कारण का कार्य। यह कारणजीव है, वह तो निश्चय है। कारणजीव जो है, वह निश्चय है, एकरूप है, त्रिकाल है और उस कारणजीव के आश्रय से प्रगट हुई मोक्षदशा, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण की व्यक्तता प्रगट हुई, उसे कार्यपरमात्मा अथवा कार्यजीव कहते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसे जीव को जानना, ऐसा कहते हैं। ऐसे पाँच भेद हैं और जीव के ऐसे भेद हैं, ऐसा नहीं। कारणजीव और कार्यजीव ऐसे हैं, ऐसा यथार्थ ज्ञान करो। आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से... यह भी अभी व्यवहार है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अरिहन्त को उत्पन्न हुए, वह भी व्यवहार है। क्योंकि एक समय की पर्याय है। इसमें दया, दान के विकल्प को तो निकाल दिया, वह तो है ही नहीं। आहा..हा..! वह तो असद्भूत है। आहा..हा..! सूक्ष्म भाव है, भाई! जैनतत्त्व समझना और पहिचानना, वह अपूर्व पुरुषार्थ है। कोई साधारण रीति से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। आहा..हा..! कहते हैं, अच्छी बात आ गयी है, लो!

मुमुक्षु : माँग की थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : माँग की है हिन्दी। हिन्दी की माँग की थी। नहीं तो आज तो स्वाध्याय चलती थी, हों!

देखो! भगवान उसे जीव कहते हैं, ऐसा समझो, ऐसा कहते हैं। जीव के दो प्रकार। दूसरे... दूसरे.. दूसरे.. पाँच द्रव्य उनके घर में रहे। जो यह भगवान आत्मा अन्दर है। यह तो देह (तो) मिट्टी-धूल है, यह तो पुद्गल है, यह कहीं जीव नहीं है और कर्म अन्दर कार्माण, तेजसशरीर है, वह भी जीव नहीं है, वह तो अजीव है और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह तो राग है, आस्रव है; वह आत्मा नहीं। समझ में आया? पुण्य-पाप के भाव होते हैं न? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह शुभभावरूपी राग पुण्य है और हिंसा,

झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, पाप आस्रव है। ये दोनों आस्रव, आत्मा नहीं है। यहाँ तो आत्मा कारण और कार्य में यह बात ली ही नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

शुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण... आहा..हा..! **होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** कार्यपर्याय का आधार है न? आहा..हा..! **केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण 'कार्यशुद्ध जीव' है।** देखो! नीचे नोट। प्रत्येक जीव, प्रत्येक आत्मा देह में विराजमान आत्मा है। वह **प्रत्येक जीव, शक्ति-अपेक्षा से शुद्ध है, अर्थात् सहजज्ञानादिकसहित है;...** क्या कहते हैं? देह में विराजमान प्रत्येक यह आत्मा चैतन्य प्रभु है, वह शक्ति अपेक्षा से सत् ज्ञानादिसहित है। कौन? त्रिकाली। ये केवलज्ञानादि, वे नहीं। आहा..हा..! आत्मा सहजज्ञान, दर्शन, आनन्द—ऐसे स्वभाव की शक्तिसहित अनादि है। **इसलिए प्रत्येक जीव, 'कारणशुद्ध जीव' है।** इस कारण से प्रत्येक जीव को कारणशुद्ध, कारणशुद्ध जीव कहा जाता है। आहा..हा..! दस प्राण से जीता है, वह तो जड़ मिट्टी है। उसमें क्या आया? वह तो जड़ है। और अशुद्धभावप्राण, अशुद्धभावप्राण—योग्यता, वह भी जीव नहीं। आहा..हा..!

यहाँ तो भगवान आत्मा शक्तिरूप अनादि से ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि सत्व, सत्, वस्तु का सत्व-उस सत्वसहित अनादि से है। इस कारण से उसे कारणजीव कहा जाता है। कहो, समझ में आया? **जो कारणशुद्ध जीव को भाता है...** - नीचे नोट में। जो कारणशुद्ध जीव की भावना करता है। आहा..हा..! अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, स्वच्छता, प्रभुता - ऐसी अनन्त शक्तिरूप जो आत्मा, उसे कारणजीव कहा जाता है। उस कारणजीव की भावना भाता है, उसमें एकाग्र होता है। देखो! **उसी का आश्रय करता है,...** आहा..हा..! सब बात गुम हो गयी। बाहर की अपेक्षा से यह मूल बात रह गयी। यह व्रत पालना, पूजा करना, भक्ति करना, यात्रा करना वह धर्म, ऐसा मान लिया गया।

मुमुक्षु : उसमें ही उलझ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझ गये।

मुमुक्षु : मूल बात.....

पूज्य गुरुदेवश्री : रह गयी।

मुमुक्षु : स्वयं कौन है, इसका भान नहीं।

आहा..हा..! कहते हैं कि जिसे आत्मा का कार्य-मोक्ष का कार्य करना है, मोक्ष अर्थात् अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, दर्शन, व्यक्त / प्रगट हों, ऐसा कार्य करना है तो उस कार्य का कारण कौन? त्रिकाली ज्ञायकभाव आत्मा जो है, शक्तिरूप से अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि कारणजीव है, वह कार्य का कारण है। समझ में आया?

कारणशुद्ध जीव को भाता है, अर्थात् **उसी का आश्रय करता है,...** चैतन्यबिम्ब प्रभु, पूर्ण ज्ञान-दर्शन-आनन्द से अन्दर आत्मा भरपूर है। ऐसे कारणजीव का जो आश्रय करता है, भक्ति करता है अर्थात् कारणजीव को भाता है, **वह व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध होता है,...** वह प्रगट अपेक्षा से केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द (स्वरूप) उस अरिहन्तपद को प्राप्त करता है। आहा..हा..! जितने अरिहन्त हुए, वे प्रत्येक आत्मा प्रत्येक अपना कारणजीव, त्रिकाल ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यध्रुव का आश्रय लेकर जो भावना प्रगट हुई, उससे केवलज्ञान हुआ, उस कार्य का कारण, वह कारण आत्मा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : विधि बता दी।

पूज्य गुरुदेवश्री : विधि यह है। समझ में आया?

उसी का आश्रय करता है,... किसका? जो कायम अनादि-अनन्त ध्रुव, आत्मा की शक्ति, ज्ञान, दर्शन आनन्द आदि ध्रुव है, ऐसे कारण का जो अन्तर में आश्रय करता है, ऐसे आत्मा का आश्रय अथवा भावना करता है, अन्तर में एकाग्र होता है, वह **व्यक्ति-अपेक्षा से...** शक्ति में अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, उसका आश्रय करने से प्रगट पर्याय में परमात्मा होता है। आहा..हा..! बात सुनी... कहो, भीखाभाई! इसमें देव-गुरु-शास्त्र तो कहीं रह गये, नहीं? यह मार्ग है। भगवान तो कहते हैं कि हमारा लक्ष्य भी छोड़ दे और तेरा परिपूर्ण स्वरूप अन्दर पड़ा है, उसका आश्रय कर।

मुमुक्षु : तब मुक्ति होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब मुक्ति होगी। ऐसी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नहीं परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उस त्रिकाल आत्मा की, एक समय की पर्याय का नहीं।

निमित्त का तो नहीं, परन्तु दया, दान, विकल्प का भी आश्रय नहीं परन्तु उसको जाननेवाली वर्तमान प्रगट पर्याय है, उसका भी आश्रय नहीं। एक समय की पर्याय का आश्रय क्या करे ? उसमें से क्या नयी पर्याय उत्पन्न होती है ? आहा..हा.. ! गजब बात, भाई ! इसलिए यह महँगा पड़ता है न !

मुमुक्षु : महँगा कहाँ है ? समझे तो सस्ता पड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सस्ता लगता है। महँगा है सब।

मुमुक्षु : .....सुननेवाले भाग्यशाली हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ! बात तो ऐसी है। यह शरीर तो मिट्टी-जड़-धूल है। यह तो पुद्गल है। यह आत्मा है ? आत्मा नहीं। यह तो मिट्टी है। मिट्टी का बंगला बना है, यह तो जड़ का है। यह आत्मा नहीं। इससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं और अन्दर में कर्म हैं, तैजसशरीर है, दोनों शरीर हैं, वे तो जड़ हैं। वे भी आत्मा नहीं और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, ये दोनों भाव तो आस्रव हैं।

मुमुक्षु : इन्हें तो जीव में लिया ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्हें तो यहाँ जीव कहा ही नहीं। ये जीव ही नहीं। ये नहीं कारणजीव, नहीं कार्यजीव। ये जीव ही नहीं। आहा..हा.. ! सेठी ! गजब काम, भाई ! आहा..हा.. ! कहते हैं कि जिसकी शक्ति भगवान आत्मा की, अन्तर में अनन्त ज्ञान-दर्शन जो भरे हैं, उनका आश्रय करने से, उनका अवलम्बन करने से, उनके सन्मुख होकर एकाग्र होने से व्यक्त अर्थात् प्रगटरूप से केवलज्ञान आदि परमात्मदशा प्रगट होती है, उसे कार्यजीव कहा जाता है। आहा..हा.. ! जीव में भी कारणजीव और कार्यजीव। वीतरागी सन्तों का आनन्द का मंथन है। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मिला ? ऐसी बात है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, उनके आगम में यह कहा है। ऐसा कहना है न ? भाई ! उस आगम में यह तत्त्वार्थ कहे हैं। ऐसा कहना है न इसमें ? ऐसे भगवान की वाणी के जो आगम हैं, उन आगम में ऐसे तत्त्वार्थ कहे हैं। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

क्या हो ? पात्रता न हो और सुनने को मिले नहीं और मिलने के बाद भी निर्णय करने का ठिकाना नहीं, अरे !

अर्थात् 'कार्यशुद्ध जीव' होता है। इस ओर नोट है न। कारणजीव में से कार्यशुद्ध जीव होता है। भाई ! यह बात बहुत गम्भीर है। गाथा ऐसी आ गयी है। यहाँ तो गाथा में पहले **जीवा** शब्द पड़ा है, तो **जीवा** - जीव की व्याख्या चलती है। भगवान की वाणी में जीव आया, वह जीव कैसा है ? उसकी व्याख्या चलती है। आहा..हा.. ! भगवान की वाणी में-आगम में ऐसा आया। देखो ! यह आगम, परमागम, जिसमें कारणजीव त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव को आगम में कारणजीव कहा है। यह तो पहले से कहते आते हैं कि यह टीका करनेवाले हम कौन ? भाई ! गणधर आदि से टीका चली आती है। हम मन्दबुद्धि वह करनेवाले कौन ? आहा..हा.. ! समझ में आया ? यह कार्य (जीव) होता है।

शक्ति में से व्यक्ति होती है;... जैसे पीपर होती है न, पीपर ? छोटी पीपर होती है न ? समझते हो या नहीं ? छोटी पीपर। छोटी पीपर होती है न ? उसे चौंसठ पहर घोंटते हैं न ? तो चौंसठ पहरी शक्ति अन्दर है तो प्रगट होती है। कंकर घिसने से उत्पन्न होती है ? कंकर में नहीं है ? वह पीपर में है। पीपर का छोटा दाना होता है न ? कद छोटा है। चरपरी अल्प है, परन्तु उसके अन्दर में सोलह आने, चौंसठ पैसे, रुपया-रुपया, अखण्ड चरपराहट स्कन्ध की पर्याय में है, तब कहा था न ? स्कन्ध की पर्याय में चरपराहट है। परमाणु में तो रस पूर्ण है, परन्तु उसकी चरपराहट नजदीक आ गयी है। यह बात कहते हैं। नजदीक आ गयी। समझ में आया ? यह घोंटते हैं तो उसमें से चौंसठ पहरी शक्ति में से व्यक्तता प्रगट होती है। चौंसठ पहरी होती है न ? चौंसठ पहर घोंटते हैं न ? तो चौंसठ पहरी चरपराहट (प्रगट होती है)। तीखाशा क्या ? चरपराहट। तुम्हारे चपरपराहट कहते हैं न ? वह चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर भरी है, वह शक्ति। प्रगट होती है, वह व्यक्ति। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन पड़े हैं, वह शक्ति और उसका आश्रय लेकर अन्दर पर्याय में अनन्त केवलज्ञान आदि प्रगट हो, वह व्यक्ति। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : शुद्धता का घोंटन...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर से एकाग्रता होती है। शुद्धता में एकाग्रता होने से पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है। भाता है, ऐसा आ गया न ? जीव को भाता है, ऐसा नहीं आया ?

कारणशुद्ध जीव को भाता है-उसी का आश्रय करता है,... यह पहले इसमें आ गया है। वाह रे वाह! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह मुक्ति का उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से यही मुक्ति का उपाय है। यह तो सिद्ध हो गया है। आहा..हा..!

अपना आत्मा अन्दर जो है, केवलज्ञान, केवलदर्शन परमात्मा को प्रगट हुए, वह कहाँ से हुआ? कहीं बाहर से चीज़ आती है? पीपर में से चौंसठ पहरी चरपराहट जो बाहर आयी, वह बाहर से आयी है? अन्दर में है। अन्दर में है, उसे शक्ति कहते हैं। प्रगट हो, उसे व्यक्त कहते हैं। इसी प्रकार आत्मा में अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द शक्तिरूप पड़े हैं, उसे कारणजीव कहते हैं। अरे! कारणजीव, अब यह कभी सुना नहीं होगा। उस कारणजीव की एकाग्रता करने पर, एकाग्रता होने से, करते... करते... करते... कार्यजीव केवलज्ञान और अरिहन्त पद प्राप्त होता है। इन दया, दान और व्रत की क्रिया से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! अभी बाहर में तो यही सब चलता है। यह व्रत पालना, अपवास करना, ऐसा करना और वैसा करना, उससे धर्म होगा। धूल में भी धर्म नहीं है। सुन तो सही! अच्छा पुण्य भी उसमें नहीं है। जेठाभाई! अभी तक यह सब कहाँ था?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विपरीत बात थी।

शक्ति में से व्यक्ति होती है; इसलिए शक्ति, कारण है और व्यक्ति, कार्य है। देखो! छोटी पीपर के अन्दर चरपराहट, वह कारण है और प्रगट होती है, वह कार्य है। इसी प्रकार आत्मा में शक्तिरूप अनन्त ज्ञान-दर्शन पड़े हैं, वह कारण है; उनका पर्याय में-अवस्था में प्रगट होना वह कार्य है। शक्ति में हो, उसमें से आता है। न हो उसमें से कहाँ से आवे? जो शक्ति और सत्व है, ज्ञान-आनन्द, वह उसका रस है। रस अर्थात् स्वभाव है, वह शक्ति है। उस शक्ति में से परमात्मपद व्यक्तरूप कार्यजीव होता है। यह व्यवहाररत्नत्रय से नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प है, राग है। राग में से कहाँ वीतरागता आती है? वीतरागता तो अन्दर आत्मा में पड़ी है। आहा..हा..! वीतरागता से भरपूर आत्मा, वह शक्तिरूप वीतरागता है, उसे कारणजीव

कहते हैं और उसकी एकाग्रता होकर पूर्ण केवलज्ञान आदि प्रगट हों, उन्हें व्यक्तरूप कार्यजीव कहते हैं। समझ में आया? कारणजीव, कार्यजीव जयपुर में कभी सुना था।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये हमारे सेठी हैं, ये मीठालाल हैं।

मुमुक्षु : सेठी की बोलने की पद्धति की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पद्धति अस्ति से है। सुना नहीं, ऐसा नहीं कहे। अब सुनता हूँ। अब सुनता हूँ न! पहले नहीं सुना, ऐसा नहीं कहे।

आहा..हा..! **ऐसा होने से....** देखो! नीचे नोट। **शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को...** शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को **कारणशुद्ध जीव कहा जाता है...** अभी तो समझना कठिन पड़े। आहा..हा..! **ऐसा होने से....** ऐसा होने से का अर्थ? शक्ति, कारण और व्यक्ति, कार्य। **ऐसा होने से शक्तिरूप शुद्धतावाले जीव को कारणशुद्ध जीव कहा जाता है और व्यक्त शुद्धतावाले जीव को कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है।** कार्यशुद्ध शब्द लिया न? कार्य जीव के बदले कार्यशुद्ध। वह कारणशुद्ध, यह कार्यशुद्ध। समझ में आया? भारी सूक्ष्म ऐसा। गर्म पानी पीना, उसमें कहीं ऐसा नहीं आया?

मुमुक्षु : दिगम्बर में था, तथापि कोई समझानेवाला नहीं था, हम इतना समझे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्त की वाणी। यहाँ तो जिन की वाणी यही चलती है न? जिनवाणी कैसी है? आहा..हा..! जिनवाणी ने कैसे तत्त्वार्थ कहे? जिनवाणी कैसा जीवद्रव्य कहा? यह बात चलती है। आहा..हा..! परमागम भगवान की वाणी में जीव तो भावप्राण से जीता है, ऐसा कहा है और द्रव्यप्राण से असद्भूत व्यवहारनय से जीता है, ऐसा संसार कहा। संसार, वह निमित्त और अशुद्धभावप्राण से जीता है, वह अशुद्धनिश्चयनय से जीव कहा। अरे! और त्रिकाल कारण तथा कार्य में अशुद्धता कुछ नहीं। त्रिकाल भगवान आत्मा कारणशुद्ध जीव है, उसका आश्रय करने से कार्यशुद्ध जीव प्रगट होता है। आहा..हा..!

यहाँ तो ऐसा कहा कि कारणशुद्ध जीव जो है त्रिकाली शक्ति, आनन्द आदि, उसमें से कार्यशुद्ध होता है। वह मोक्षमार्ग से कार्यशुद्ध होता है और मोक्षमार्ग जीव से होता है, ऐसी बात न करके सीधी बात ऐसी की है। क्या कहा? भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-

आनन्द अनन्त ऐसी शक्तिरूप जो आत्मा है, वह कारणशुद्ध जीव है। वह कारणशुद्ध, भगवान के आगम में, तत्त्वार्थों में यह तत्त्व कहा। समझ में आया? और उस कारणशुद्ध जीव में से कार्यशुद्ध जीव होता है। उस मोक्षमार्ग में से कार्यशुद्ध जीव होता है, ऐसा न कहकर सीधे कारण से कार्य / मोक्ष होता है, (ऐसा कहा)। समझ में आया? क्या कहा?

मोक्षमार्ग... जो ध्रुव त्रिकाली शक्तिरूप ज्ञायकभाव है, वह कारणशुद्ध जीव और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं, वह मोक्षमार्ग है, परन्तु उस मोक्षमार्ग का कार्य केवलज्ञान आदि है, ऐसा नहीं कहा। क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय का तो व्यय होता है और मोक्ष की पर्याय जो प्रगट होती है, वह कारणशुद्ध जीव में से प्रगट होती है। मोक्षमार्ग की पर्याय नाश होती है, उसमें से कार्य नहीं आता। अरे! भारी सूक्ष्म, भाई!

फिर से। कहते हैं... यहाँ तो कारणशुद्ध जीव, वह शक्तिरूप; कार्यशुद्ध जीव, वह व्यक्तिरूप। उस कारणशुद्ध जीव से कार्यशुद्ध जीव होता है, ऐसी सीधी बात कही है। ऐसा नहीं कहा कि कारणशुद्ध जीव में से मोक्षमार्ग पहले प्रगट होता है और फिर मोक्षमार्ग से कार्यशुद्ध जीव-कार्य शुद्धि होती है। मोक्षमार्ग भी कारणशुद्ध जीव का आश्रय करने से उत्पन्न होता है और कार्यशुद्ध जीव भी जीव के आश्रय से उत्पन्न होता है, ऐसी सीधी बात है। भाई! आहा..हा..!

मुमुक्षु : उपाय यह एक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय एक है। यह दूसरी बात की है। यहाँ तो कार्यशुद्ध जीव जो कहा, वह मोक्षमार्ग की पर्याय कारण और मोक्ष कार्य, ऐसा न कहकर.... क्योंकि मोक्षमार्ग की पर्याय जो है, उसका अभाव होता है, तब मोक्ष होता है; अतः अभाव में से भाव कहाँ से आये? ऐसे थोड़े-थोड़े शब्द में बहुत गम्भीरता है। समझ में आया? आहा..हा..!

(कारणशुद्ध, अर्थात् कारण-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् शक्ति -अपेक्षा से शुद्ध। कार्यशुद्ध, अर्थात् कार्य-अपेक्षा से शुद्ध, अर्थात् व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध।) स्पष्टीकरण बहुत सरस किया है। समझ में आया? समझाणूं कांई? यह तो हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आया? (ऐसा हिन्दी में कहते हैं)। आहा..हा..! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ ने कहा, वह आगम और उस आगम में ऐसी बात है। दूसरे आगम में

ऐसी बात नहीं हो सकती। समझ में आया ? पण्डितजी ! आहा..हा.. ! कार्यशुद्ध की यह व्याख्या की है। समझ में आया ? पश्चात्

अशुद्ध-सद्भूत-व्यवहार से मतिज्ञानादि विभावगुणों का आधार होने के कारण 'अशुद्धजीव' है। इसकी वह पर्याय आधार होने से ऐसा लिया, भाई ! उसमें कार्य में आधार लिया न ? शुद्ध गुणों का आधार होने से, आधार होने के कारण कार्यशुद्ध जीव है। **आधार होने के कारण 'कार्यशुद्धजीव' है।** पर्याय है न आधार। द्रव्य तो आधार त्रिकाल है। वह तो अनन्त गुण का-शक्ति का आधार है। त्रिकाली शक्ति का आधार द्रव्य है। समझ में आया ? परन्तु यह तो पर्याय जो प्रगट हुई, उसका आधार यह है। आहा..हा.. !

यहाँ लिया, देखो न, शुद्ध गुणों का आधार होने से, सद्भूतव्यवहारनय से उसे कार्यशुद्ध जीव कहा और त्रिकाल कारण भगवान, वह तो अनन्त गुण का आधार द्रव्य है, वह तो त्रिकाल है। उसे कारणजीव कहते हैं। उस कारणजीव को बराबर समझना और उसका आश्रय करके कार्य प्रगट करना, यह उसका तात्पर्य और सार है। समझ में आया ?

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)